Vol. 4, Issue: 6, August: 2016
ISSN:(P) 2347-5404 ISSN:(O)2320 771X

महिला सशक्तिकरण एक सामाजिक अनिवार्यता

डॉ. सतीश कुमार सिंह
वरिष्ठ असिस्टेन्ट प्रोफेसर (इतिहास विभाग)
डी.एस.एन. पी.जी. कालेज, उन्नाव

सारांश

''वास्तव में महिला सशक्तिकरण उस पितृसत्तात्मक सत्ता के प्रति विरोध है, जो उन्हें सामाजिक समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय के अधिकार का विरोध करता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब मानव असभ्य और जंगली अवस्था में था, उस समय मातृसत्तात्मक समाज था तथा कबीले पर स्त्रियों का प्रभुत्व था परन्तु आर्थिक गतिविधियाँ बढ़ने के पश्चात स्त्री घर तक ही सीमित हो गयी। फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात नये प्रजातांत्रिक मूल्यों से स्त्रियां परिचित हुईं और इन्हें यह एहसास हुआ कि वे पुरूषों की दासतां में जी रही थी तथा उन्हें भी स्वतंत्र व सम्मानयुक्त जीवन जीने का अधिकार है। पाश्चात्य जगत में विद्वानों ने पुरूषों की वर्चस्ववादी मान्यताओं को पूर्णतया नकार दिया। आज पाश्चात्य जगत में स्त्रियां खुली हवा में सांस ले रही हैं परन्तु भारत में महिला शक्तिकरण के लिए वह माहौल नहीं बन पाया है, जिसकी हमें आवश्यकता है। आज भी महिलाएं तमाम कुरीतियों जैसे–बाल विवाह, सती प्रथा, दहेज, देवदासी, कन्या भ्रूण हत्या इत्यादि का शिकार हैं। महिलाओं के लिए शिक्षा ही वह साधन है जिससे वह अपने अधिकारों के विषय में जान सकती हैं और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता निश्चित रूप से सकारात्मक परिवर्तन लायेगी। महिलाओं को सम्मान के साथ जीवन जीने की परिस्थितियों को पैदा करना एक सामाजिक अनिवार्यता है और समय की माँग भी।''

आज भारत की आजादी के लगभग 70 वर्ष पूरे हो चुके हैं और भारत ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में महिलाओं को शक्तिशाली बनाने के लिये गम्भीर प्रयास किये जा रहे हैं। भारत के सन्दर्भ में कहना होगा कि महिलाओं की स्थिति पुरूषों की तुलना में विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक, मानसिक एवं अन्य सभी स्तरों पर पिछड़ी दिखायी देती है। वास्तव में महिला सशक्तिकरण उस पितृसत्तात्मक सत्ता के प्रति विद्रोह है जो उन्हें सामाजिक समानता स्वतन्त्रता एवं न्याय के अधिकार का विरोध करता है। यूनाइटेड नेशन्स डेवलेपमेन्ट प्रोग्राम अपना ध्यान लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण पर केंद्रित करते हुए कहता है कि यह न केवल महिलाओं के मानवाधिकार की बात नहीं हैं बल्कि यह वह रास्ता है जिससे हजारों वर्षों से निर्धारित लक्ष्यों का स्थायित्व के साथ विकास हो सकेगा। पूरे विश्व में महिलायें आबादी के आधे हिस्से से कुछ कम हैं परन्तु भारत में उनकी भागीदारी का अनुपात कम है जिसके पीछे सामाजिक सोच और बहुत हद तक पुरातन मान्यतायें जिम्मेदार हैं, जिन्होनें महिलाओं को घर में घूंघट में कैद कर दिया है और विभिन्न स्तरों पर सामाजिक यातनायें सहने के लिये मजबूर किया जिससे महिलाएं सामाजिक मान्यताओं के घूंघट को हटाकर आगे आने से डरती हैं।

Vol. 4, Issue: 6, August: 2016
ISSN:(P) 2347-5404 ISSN:(O)2320 771X

दुर्भाग्य इस बात का है कि नारी सषक्तिकरण की बातें केवल शहरों तक सीमित हैं। शहरों में आर्थिक रूप से स्वतन्त्र और नई सोच वाली शिक्षित महिलायें, ऊँचे पदों पर काम करने वाली महिलायें जो पुरूषों के अत्याचार को सहन नहीं करती है। वहीं दूसरी ओर गाँवों में सहने वाली महिलायें जो अपने अधिकारों को जानती हैं वे अत्याचारों और सामाजिक, बंधनों को सहने की इतनी आदी हो चुकी हैं उनको वहां से निकालना किसी चुनौती से कम नहीं है। शहरों और गाँव के इस अन्तर को मिटाना एक सामाजिक अनिवार्यता है इसके अभाव में हम राष्ट्र का समुचित विकास नहीं कर सकते।

महिलाएं लैंगिक भेदभाव का शिकार क्यों हुई! इस प्रष्न के उत्तर के लिए इतिहास के पृष्ठों पर दृष्टिपात करना आवष्यक है। पुरूष ने महिलाओं को अपने अधीन बनाये रखने के लिए अपनी सुविधानुसार धर्म तथा परम्पराओं का सृजन किया तथा महिलाओं के मन में यह विष्वास पैदा किया कि वह ईष्वर द्वारा रचित है, जिसका कार्य केवल पुरूष की सेवा करना है। पुरूष ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि यह असमानता प्रकृति द्वारा प्रदत्त है। परन्तु सत्य यह है कि मानव जिस समय असभ्य और जंगली अवस्था में था उस समय मातृसत्तात्मक समाज था, जिसमें कबीले पर स्त्री का प्रभुत्व था। मातृसत्तात्मक युग में न तो परिवार की अवधारणा थी और न ही विवाह सम्बन्धित अवधारणा ने जन्म लिया था। परन्तु ऐतिहासिक काल में जब मानव की आर्थिक गतिविधियां बढ़ी तो स्त्री और पुरूष के बीच श्रम का विभाजन हुआ जिसमें स्त्री घर में बच्चों का पालन–पोषण करती अथवा कम श्रम वाले कार्य करती और पुरूष बाहर के अधिक श्रम वाले कार्य करता था। शरीर से अधिक श्रम करने के कारण पुरूष बलशाली होता गया। पुरूष द्वारा अधिक श्रम करने के कारण उत्पादन में वृद्धि हुई जिससे उत्पादन का संचय होने लगा और सम्पत्ति सम्बन्धी अवधारणा विकसित हुई। अब सम्पत्ति पर पुरूष का अधिकार हो गया। सम्पत्ति के कारण ही स्त्री पुरूष पर आश्रित हो गयी। पितृसत्तात्मक समाज में विवाह, प्रेम और परिवार की अवधारणाएं अस्तित्व में आयीं। पुरूष ने महिलाओं को धर्म और पुरानी मान्यताओं के भ्रम जाल में फंसाकर उसका सदैव मानसिक व शारीरिक शोषण किया। पुरूष ने अपने कुत्सित स्वार्थों की पूर्ति के लिए स्त्री को देवी और दासी (देवदासी) बनाया। इतिहास साक्षी है कि महिलाओं को इस परिवेश में रहते–2 इस बात का ख्याल भी नहीं आया कि वह भी पुरूष की भांति स्वतंत्र, अधिकारों से युक्त और सम्मान सहित जीवन जीने की अधिकारिणी है।

1789 में फ्रांसीसी क्रान्ति ने विश्व को स्वतंत्रता, भ्रातृत्व और समानता का पाठ पढ़ाया। इस क्रान्ति द्वारा फ्रांस में राजशाही और गुलामी का अंत हुआ। क्रांति में महिलाओं ने बढ़चढ़कर भाग लिया और वे भी नये प्रजातांत्रिक मूल्यों के सम्पर्क में आयी। उन्हें यह एहसास हुआ कि वे पुरूषों द्वारा प्रताड़ित की जा रही थी तथा उन्हें भी स्वतंत्र व सम्मान के साथ जीने का अधिकार है। ओलिप्पी दि गूजे, मेरी बोल्सटनक्राफ्ट, सीमेन दि बोउवर, एलीन मार्गन, जर्मन ग्रियर, जे.एस. मिल, सेण्ट साइमन और मार्क्स जैसे विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि स्त्री की गुलामी उस पर पुरूष द्वारा थोपी गयी है, जबकि महिलाएं किसी भी मायने में पुरूष से कमतर नहीं हैं। आज पाष्चात्य देषों में स्त्री स्वतंत्र हैं किसी भी प्रकार से पुरूषों पर निर्भर नहीं है। परन्तु भारत में पाश्चात्य देशों की तुलना में स्थिति भिन्न है। भारत में स्त्रियां बाल–विवाह, सती प्रथा, दहेज प्रथा, देवदासी प्रथा, विधवा विवाह निषेध,

Vol. 4, Issue: 6, August: 2016
ISSN:(P) 2347-5404 ISSN:(O)2320 771X

कन्य भ्रूण हत्या जैसी सामाजिक कुरीतियों का शिकार हैं। भारत में महिलाओं के अधिकारों के प्रति भारत सरकार और सामाजिक संस्थानों, एन.जी.ओ. निरन्तर कार्यरत है परन्तु वास्तविकता के धरातल पर यह प्रयास ऊंट के मुंह में जीरा साबित हो रहे हैं। महिलाओं को शक्तिशाली बनाने के लिए सामाजिक भेदभाव को समाप्त करना ही होगा और शिक्षा ही वह हथियार है जिससे महिलाओं को उनके अधिकारों के विषय में जागृत किया जा सकता है। आजादी के पश्चात 1951 में भारत में मात्र 8.86 प्रतिशत महिलायें साक्षर थी और 2011 की जनगणना के अनुसार 65.46 प्रतिशत महिलायें साक्षर हो चुकी हैं।[1] भारत में साक्षरता की स्थिति 1951–2011 के मध्य निम्न रही

तालिका–1

जनगणना वर्ष	व्यक्ति	पुरूष	महिलाएं	साक्षरता दर में महिला पुरूष अन्तर
1951	18.23	21.16	8.86	18.30
1961	28.3	40.4	15.35	25.05
1971	34.45	45.96	21.97	23.98
1981	43.57	56.38	29.76	26.62
1991	52.21	64.13	39.29	24.84
2001	64.83	75.26	53.67	21.59
2011	74.04	82.14	65.46	16.68

(सोत्र–भारत 2015)

भारत में लिंगानुपात के आंकड़े नीतिकारों एवं समाजशास्त्रियों के लिए अत्यन्त चिन्ता का विषय बना हुआ है स्त्रियों का घटता लिंगानुपात आने वाले भविष्य में गम्भीर सामाजिक असंतुलन की स्थिति उत्पन्न करेगा। भारत में लिंगानुपात की स्थिति निम्नवत् है[2] :–

तालिका 2

जनगणना वर्ष	लिंगानुपात (प्रति 1000 पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या)
1901	972
2001	933
2011	943

(सोत्र–भारत 2015)

जब हम भारत के राज्यों में लिंगानुपात की स्थिति को देखते हैं तब हम पाते हैं कि भारत के सबसे समृद्ध राज्यों पंजाब (893), हरियाणा (877), राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (866) में लिंगानुपात की स्थिति अन्य राज्यों की तुलना में खराब है।[3] पिछले कुछ दशकों में सीमित परिवार की अवधारणा प्रबल हुई है जिसके कारण पुराने संयुक्त परिवार की मान्यताएं टूटी हैं और तमाम सरकारी एवं गैर सरकारी एजेंसियां, जनसंख्या नियंत्रण के प्रयास में प्रचार कर रही है जिससे शहरों में दो बच्चों के सिद्धान्त का युवा पीढ़ी का गहरा प्रभाव पड़ा, उसको यह बात भली–भांति समझ में

आ गयी कि अधिक बच्चों के स्थान पर दो बच्चों को समुचित शिक्षा देकर जिम्मेदार नागरिक बनाना ज्यादा आसान है। युवा वर्ग ने अधिक बच्चों के स्थान पर गुणवत्ता को अधिक महत्व दिया, परन्तु वह अपनी सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं को नहीं त्याग सका, समाज में यह मान्यता व्याप्त है। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ब्राह्मण ग्रंथों में पुत्रों को अधिक महत्व दिया जाता था। वर्तमान समय मे भी सामाजिक स्तर पर पुत्रों के पैदा होने पर खुशो मनायी जाती है और यहीं से एक नई समस्या पैदा होती है कन्या भ्रूण की हत्या जिसको समाज मौन स्वीकृति देता है। पिछले 20 वर्षों में 1 करोड़ लड़कियों को गर्भ में ही नष्ट कर दिया गया गया।[4] एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में बालिका जनसंख्या 0–6 वर्ष, वर्ष 2001 में 78.83 मिलियन थी जो 2011 में घटकर 75.84 मिलियन हो गयी।[5] 2001 से 2011 के मध्य 3 मिलियन कन्या भ्रूणों की हत्या हुई।[6] यहां महत्वपूर्ण बात यह है 0–6 वर्ष आयु वर्ग की कन्याओं के प्रति 1000 बालकों पर संख्या 914 थी जिसका अर्थ है लगभग 70 कन्यायें 0–6 वर्ष आयु वर्ग में या तो गर्भ में मार दी जाती हैं या जन्म के 6 वर्ष से पूर्व उनकी मृत्यु हो जाती है। शर्मनाक स्थिति तो यह है कि यह भारत में 0–6 वर्ष आयु वर्ग की कन्याओं की 1947 के पश्चात् न्यूनतम स्थिति है। हाल ही में प्रकाशित हाल ही में प्रकाशित केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 2001 से 2005 के अन्तराल में 6,82,000 कन्या भ्रूण हत्याएं हुई हैं।[7]

तालिका–3
0–6 वर्ष की कन्याओं की स्थिति
(प्रति 1000 बालक)

1981 में	962
1991 में	945
2001 में	927

(सोत्र–भारत 2015)

देश के 328 जिलों में बच्चों का लिंगानुपात 950 से कम है। सरकार का लक्ष्य 2011 व 2012 तक 935 बच्चे एवं 2016–17 तक 950 करना है।[8] हमारे समाज में लोगों में पुत्र लालसा और घटता स्त्री पुरूष अनुपात समाजशास्त्रियों, जनसंख्या विशेषज्ञों और योजनाकारों के लिए चिंता का विषय है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार भारत में अवैध रूप से अनुमानित प्रतिदिन 2 हजार अजन्मी कन्याओं का गर्भपात होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस विषय पर चिंता व्यक्त करते हुए चेताया है कि भारत में बढ़ती कन्या भ्रूण हत्या जनसंख्या से जुड़े संकट उत्पन्न कर सकती है जहां समाज में कम महिलाओं की वजह से जुड़ी हिंसा एवं बाल अत्याचार के साथ–साथ पत्नी की दूसरों के साथ हिस्सेदारी में बढ़ोत्तरी हो सकती है और यह एक सामाजिक मूल्यों का पतन संकट की स्थिति उत्पन्न कर सकता है। भारत में महिलाओं को सषक्त करने के लिए तमाम सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाएं निरन्तर कार्यरत हैं, परन्तु तमाम प्रयासों के बावजूद जो परिणाम आने चाहिए वह प्राप्त नहीं हो रहे हैं उनके स्थान पर जमीनी सच्चाई कुछ और ही दिखायी देती है। समाज के हित में आज यह अनिवार्य हो गया है कि 21वीं शताब्दी में बेटे और बेटी का लालन–पालन, पोषण, आहार, षिक्षा का अवसर और सुसंस्कार देना आवश्यक हो गया है। बेटी और बेटे दोनों ही स्वस्थ, शिक्षित, सुसंस्कारित होकर उत्तम नागरिक बनें यह अनिवार्य है।[9] लिंग परीक्षण

गैर कानूनी होते हुए भी समाज की मूक सहमति से किये जा रहे हैं, और कन्या भ्रूण हत्यायें हो रही हैं यह तत्काल बन्द होना चाहिए। भारत में प्रतिवर्ष 15 हजार लड़कियाँ आत्महत्या कर लेती हैं, 2 लाख 75 हजार वैश्या बना दी जाती हैं और एक लाख 10 हजार लड़कियाँ भिखारी बना दी जाती हैं।[10] वर्ष 2010–11 में राष्ट्रीय महिला आयोग में पंजीकृत शिकायतों का ब्यौरा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।[11]

तालिका–4

1.	तेजाब से हमला	3
2.	हत्या का प्रयास	7
3.	बलात्कार का प्रयास	212
4.	द्विविवाह / व्यभिचार	96
5.	घरेलू हिंसा / वैवाहिक विवाद	3272
6.	दहेज हत्या	489
7.	दहेज उत्पीड़न	499
8.	कार्यस्थल पर उत्पीड़न	510
9.	अपहरण / भगा ले जाना	118
10.	छेड़छाड़ / तंग करना	3431
11.	हत्या	12
12.	बालिका शिशु हत्या / भ्रूण हत्या	6
13.	पुलिस उदासीनता	3430
14.	बलात्कार	593
15.	कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न	110
16.	विविध	3437

(सोत्र–राष्ट्रीय महिला आयोग
वार्षिक रिपोर्ट 2010–11)

ग्रामीण समाज में महिला सशक्तिकरण के विषय में एक महत्वपूर्ण पड़ाव तब आया जब वर्ष 1993 में 73वाँ संविधान संषोधन अधिनियम पारित हुआ। इस अधिनियम में पंचायतों के माध्यम से महिलाओं को सुदृढ़ करने की योजना बनायी गयी। भविष्य में शिक्षा के प्रचार–प्रसार के साथ–2 ग्रामों के आर्थिक एवं सामाजिक असमानता दूर कर राज्यों का सर्वांगीण विकास में पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। वर्तमान समय में पंचायती राजव्यवस्था को लागू हुए 23 वर्ष हो चुके हैं और जब पंचायतों म महिलाओं की भूमिका की समीक्षा होती है तब हमें यह सोचने के लिए मजबूर होना पड़ता है कि क्या महिलाओं के जिन अधिकारों के लिए उन्हें आगे लाने का प्रयास किया गया, क्या वह उद्देश्य पूरा हुआ है? ग्रामीण भारत में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण की मेहरबानी से महिला घर से बाहर तो निकली हैं परन्तु आज भी उनके निर्णय अपने नहीं होते आज पंचायत की वास्तविक स्थिति यह है सारे कार्य महिलाओं के पति या उनके सगे रिश्तेदार ही उनके कृत्यों का निर्वाह करते हैं। महिलाएं आज भी पर्दे से बाहर नहीं

निकल पा रही है इसके पीछे मूल कारण निरक्षरता है वर्ष 2010 में उत्तर प्रदेश में पंचायत पदों पर आसीन महिलाएं निरक्षर थी वास्तविकता तो यह है कि महिलाएं भारतीय ग्रामीण परिवेश के सामाजिक व्यवस्था को तोड़ने में असफल रही है जहां उनको घर के अन्दर की जिम्मेदारी दी गयी है और जब तक महिलाएं बाहर की दुनिया के सम्पर्क में नहीं आयेंगी उनकी स्थिति में उल्लेखनीय सुधार नहीं आयेगा। वर्ष 2015 में हुए पंचायत चुनावों में शिक्षित महिलाओं के प्रतिशत में आशानुकूल प्रगति हुई है। यहां आवश्यक यह है कि सरकार को पंचायत चुनावों में भाग लेने वाले पत्याशियों की न्यूनतम शैक्षिक योग्यता निर्धारित करनी चाहिए ताकि ग्रामीण समाज में व्याप्त महिलाओं के प्रति हो रहे अत्याचारों से रोका जा सके। केन्द्र एवं राज्य की योजनाओं को लागू किया जा सके और ग्रामीण समाज में महिलाओं के सशक्तिकरण का स्वप्न वास्तविक धरातल पर दिखाई दें।

निष्कर्ष

महिला सशक्तिकरण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा सामाजिक सोच है और सामाजिक सोच बदले बिना महिलाओं को बल प्रदान नहीं किया जा सकता। आज जरूरत इस बात की है कि पितृसत्तात्मक सत्ता जिसके अन्तर्गत महिलाओं को कमतर माना जाता है, इस सोच में बदलाव अब समय की मांग है ताकि महिलाओं को सामाजिक समानता स्वतंत्रता एवं न्याय मिल सके और राष्ट्र के निर्माण में दोनों एक साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर सहयोग करें।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारत 2015 सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ–22
2. वही पृष्ठ–17
3. वही पृष्ठ–18, 19
4. शकील प्रेम, धर्म : एक अफीम है, स्वाभिमान जागृति मिशन, दिल्ली, 2010, पृष्ठ–67
5. www.thehindu.com/news/nation 9 Oct. 2012, New Delhi.
6. वही।
7. webdunia
8. वही।
9. प्रो. सुगम आनन्द, भारतीय इतिहास में नारी, साहित्य संगम, इलाहाबाद, 2001, पृष्ठ–143
10. मंजु सुमन, दलित महिलायें, सम्यक् प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृष्ठ–44।
11. वार्षिक रिपोर्ट राष्ट्रीय महिला आयोग, 2010–11, पृष्ठ–161।